गुलाम अब्बास

●●●

वंश-वृत्त

छज्जू

बाप के नाम का, खोज करने पर भी, पता न चल सका । गाँव में कबाब बेचते थे ।

शेख़ मसीता

छज्जू के बेटे । शहर में पहले बीड़ी सिगरेट की दुकान की, फिर अत्तारी करने लगे ।

हकीम उमरदराज़

शेख मसीता के बेटे । अपढ़ थे, मगर सारी उम्र हकीमी करते रहे । ग़ज़ब के होशियार थे । अगर तालीम पायी होती, तो न जाने क्या-क्या कमाल दिखाते । कहते हैं उन्हें कीमिया बनाने का शौक़ था, और उनका यह शौक़ पागलपन की हद तक पहुँचा हुआ था । जो कुछ कमाते उसी की भेंट चढ़ जाता । मगर आखिरी उम्र में इन्होंने कीमियागरी से तौबा कर ली थी ।

चौधरी शम्सुद्दीन

हकीम उमरदराज़ के बेटे। तीन-चार। दर्जे तक पढ़े थे ! इनकी गिनती शहर के बड़े ठेकेदारों में होती थी। इन्होंने खासी दौलत कमायी और काफ़ी जायदाद भी बनायी।

हाजी शफ़ाअत अहमद

चौधरी शम्सुद्दीन के बेटे। एंट्रेंस तक तालीम पायी। वर्षों एक सरकारी दफ़्तर में क्लर्की करते रहे। बाद में सुपरिंटेंडेंट हुए। पेंशन मिली और हज को गये।

नोट—इनके वक़्त से इस खानदान के हाथ से व्यापार निकल गया और नौकरी होने लगी।

क़ारी ग़ौस मुहम्मद

हाजी शफ़ाअत अहमद के बेटे। अभी कॉलेज मे ही थे कि हाजी साहब ने अपने असर-रुसूख के बल इन्हें रेलवे में गार्ड की नौकरी दिलवा दी। बड़ी अच्छी आवाज़ थी। मकतब में ही क़िरअत (कुरान को लय के साथ पढ़ना) भी सीखी थी, जिस कारण क़ारी कहलाये। इन्होंने नमाज़ कभी नहीं छोड़ी। इस की वजह लोग यह बताते हैं कि रेलवे की नौकरी ने इन्हें वक़्त का बहुत पाबन्द बना दिया था।

खानसाहब ग़ज़नफ़र अली शाह सब-इंस्पेक्टर पुलिस

क़ारी ग़ौस मुहम्मद के बेटे। बी० ए० तक शिक्षा पायी। बाद में फ़ुलौर जा कर पुलिस की ट्रेनिंग हासिल की। बहुत रोबदाब वाले और लम्बे-तगड़े आदमी थे। मिज़ाज में बला का गुस्सा था। बात-बात में मातहतों पर लाल-पीले होते थे। दिलावर और मनचले थे। बड़े-बड़े नामी डाकुओं को बहादुरी से गिरफ़्तार किया था। शहर के बदमाश और उठाईगीरे इन का नाम सुन कर काँपने लगते थे। इनकी बहादुरी के क़िस्से बहुत मशहूर

थे। मगर इन की बदमिज़ाजी और हद से ज़्यादा शराब पीने के कारण ऊपर के अफ़सर इन से नाखुश रहते थे, चुनाँचे उम्र भर सब इंस्पेक्टरी से आगे न बढ़ सके। इन की जाति हमेशा एक पहेली बनी रही। लोग इन्हें ग़ज़नफ़र शाह सय्यद बादशाह कह कर पुकारते थे। इन्होंने कभी अपने सय्यद होने का प्रतिवाद नहीं किया। खुद ये अपने दस्तखत 'खाँ साहब ग़ज़नफ़र अली' किया करते थे।

शेख़ तुराब अली बी० ए० एल एल० बी० एडवोकेट

ग़ज़नफ़र अली शाह, सब इंस्पेक्टर पुलिस के बेटे। शहर के सब से क़ाबिल वकीलों में गिने जाते थे। बड़े हँसोड़ और मिलनसार थे। हास्य रस की शायरी भी करते थे। योग्यता से ज़्यादा इन की विनोद-प्रियता इन की ख्याति का कारण बनी। इन्होंने अपने पेशे को ध्यान में रखते हुए अपने नाम के साथ शेख़ लिखना ज़्यादा पसन्द किया। वकालत में खूब नाम और धन भी कमाया।

डा० तहसीन अली एम० बी० बी० एस०, सर्जन ऐंड फ़िज़ीशियन

शेख़ तुराब अली बी० ए० एल-एल० बी० एडवोकेट के बेटे। बचपन ही से बहुत सीधे-सादे और रहमदिल थे। इन्हें यह पसन्द नहीं था कि कोई भी आदमी दुख-दर्द से पीड़ित रहे। इनके पूर्वज हकीम उमर दराज़ हिकमत में नाम पा चुके थे। इसीलिए इन्होंने बाप के विरोध करने के बावजूद डाक्टरी पढ़ी और रोगियों की सेवा में ज़िंदगी बिता दी।

मिस्टर इलियास हारून बार-एट-ला

डा० तहसीन अली एम० बी० बी० एस० सर्जन एंड फ़िज़ीशियन के बेटे। इन्हें स्कूल के ज़माने से ही यूरोप जाने का बेहद शौक़ था, इसलिए विलयात जा कर बैरिस्टरी पास की। खानदान का नाम खूब बढ़ाया और धन भी बहुत कमाया।

खान बहादुर मियाँ रुक्नुद्दीन, मेम्बर लेजिस्लेटिव कौंसिल

मि० इलियास हारून बैरिस्टर के बेटे। इनकी उम्र का अधिकांश भाग संघर्ष में बीता। आराम बहुत कम नसीब हुआ। यद्यपि ये शिक्षा अधिक न प्राप्त कर सके, किंतु अपनी प्रतिभा और बुद्धिमत्ता के बल पर खानदान का नाम खूब रोशन किया। अभी १७-१८ बरस के थे कि एक समाज-सुधारक संस्था में स्वयंसेवक के रूप में भरती हो गये और इसी कारण अधिक शिक्षा न प्राप्त कर सके। ये अच्छे वक्ता थे। इसलिए धीरे-धीरे नेता बन गये। संयोग से उस समय देश में कोई आन्दोलन नहीं चल रहा था। नेतागीरी का बाज़ार मंदा पड़ गया तो इन्होंने साहित्यिक पत्रिका निकाली। पर ये वक्ता थे, साहित्यकार नहीं। इसलिए लोगों ने पत्रिका से विशेष दिलचस्पी नहीं ली और उसे बंद कर देना पड़ा। म्युनिसिपैलिटी की मेम्बरी के लिए खड़े हुए तो पहली बार सफलता न मिली। दूसरी बार फिर कोशिश की, पर असफल रहे। पर वोट काफ़ी मिले थे, इसलिए इन्हें इत्मीनान था। तीसरी बार फिर नाम पेश किया। इस बार इन्होंने इस के लिए तीन महीने पहले एक साप्ताहिक पत्र निकलवाया। अल्लाह ने क़ामयाब किया। होते-होते कौंसिल के मेम्बर भी बन गये। सरकार ने 'खान बहादुर' की उपाधि दी। ज़मीन भी मिली।

नोट—इन के समय से खानदान के लोगों को सरकारी उपाधियाँ मिलने लगीं।

आनरेबुल सर दारा शिकोह, चीफ़ जस्टिस हाईकोर्ट

र नबहादुर मियाँ रुक्नुद्दीन एम० एल० सी० के बेटे। इनका समय बहुत अच्छा बीता और इन्हें ज़्यादा जद्दो-जेहद नहीं करनी पड़ी, क्योंकि खानदान के नाम और बाप की सेवाओं के कारण इन्हें हर जगह सफलता ही सफलता मिली। सरकार ने भी इन की क़द्र की। इन के ज़माने में खानदान के यश और धन दोनों में वृद्धि हुई।

राइट आनरेबुल सर जमशेदजाह बहादुर पी० सी० के० सी० एस० आई, के० सी० आई० ई०

सर दारा शिकोह, चीफ़ जस्टिस हाईकोर्ट के सुपुत्र। कई रियासतों के मंत्री और फिर एक बड़ी रियासत के प्रधान-मंत्री हुए। खूब धन कमाया और खानदान की इज़्ज़त को चरम-शिखर तक पहुँचाया। अंत समय काफ़ी बड़ी जागीर छोड़ी।

खान बहादुर सूफ़ी बेदारबख्त बी० ए० जागीरदार

राइट आनरेबुल सर जमशेद जाह बहादुर पी० सी० के० सी० एस० आई०, के० सी० आई० ई० के बेटे। बी० ए० तक तालीम पायी। बाप ऊँची शिक्षा के लिए विलायत भेजना चाहते थे, पर उनका स्वर्गवास हो गया। बेदारबख्त बचपन ही से बड़े सीधे-सादे और विनम्र स्वभाव के थे। धर्म की ओर इनका झुकाव ज़्यादा था। खुदा का दिया सब कुछ था। ऊँची तालीम के लिए यूरोप जाने की ज़रूरत थी, न नौकरी करने की। ये एकांतबासी हो कर अल्लाह की याद में लगे रहे। इनकी उम्मीद और इच्छा के खिलाफ़ सरकार ने इन्हें खान बहादुर की उपाधि दी। उसे खुदा की मेहरबानी समझ कर खामोश हो रहे।

साहबज़ादा नसीम उर्फ़ छोटे मिर्ज़ा, रईस आज़म

खान बहादुर सूफ़ी बेदारबख्त बी० ए० जागीरदार के बेटे। मैट्रिक तक तालीम पायी, फिर अपनी जागीर का इंतज़ाम करने लगे। बाप की तरह इन्होंने भी नौकरी को अपने लिए हराम जाना। नौकरी की ज़रूरत भी [illegible] ईसाना ठाठ से रहे। बहुत खूबसूरत और तंदुरुस्त थे। कहते [illegible] सा खाना खाया और जैसा कपड़ा पहना, वैसा बहुत कम

लोगों को नसीब होता है। खानदान में 'मिर्ज़ा' लिखना पहले-पहल इन्होंने ही शुरू किया।

अबुल-ख़याल मिर्ज़ा 'बेकल'

साहबज़ादा नसीम उर्फ़ छोटे मिर्ज़ा, रईस आज़म के बेटे। एंट्रेंस में फ़ेल होने के बाद तालीम से जी ऐसा उचाट हुआ कि फिर स्कूल का रुख नहीं किया। शायरी से बचपन से ही लगाव था। अपने मकान पर बड़े-बड़े तारीख़ी मुशायरे किये। ख़ुद शे'र कहते थे। मशहूर था कि शे'र कहना होता तो चादर ओढ़ कर चारपाई पर लेट जाते और घंटों बिस्तर पर लोटते-पोटते रहते और जब तक ग़ज़ल पूरी न हो जाती, न उठते। बहुत-सा रुपया ख़र्च कर के एक दीवान 'बेकल की पुकार' नाम से बढ़िया आर्ट पेपर पर सुनहरी रोशनाई से छपवाया था, जिसमें अरबी, फ़ारसी और उर्दू तीनों ज़बानों का कलाम था। वह दीवान अब दुर्लभ है। कला-प्रेमी और साधु आदमी थे। अपनी ज़िंदगी में दुर्लभ हस्त-लिखित पुस्तकों और पुरानी तसवीरों का एक बहुत क़ीमती संग्रह किया था। जाने इनके बाद उसका क्या हुआ!

नन्हें मिर्ज़ा

अबुल ख़याल मिर्ज़ा 'बेकल' के साहबज़ादे। वाजिबी तालीम पायी। अँगरेज़ी से बिलकुल कोरे रहे। बाप की इच्छा थी कि इन्हें शे'र-शायरी से लगाव पैदा हो और बाप का नाम रोशन करें, पर इन्हें इससे ज़रा भी दिलचस्पी न थी। इनका झुकाव बचपन से ही संगीत की ओर था। बाप के विरोध के बावजूद बड़े-बड़े नामी-गिरामी गवैयों को बुला कर उनसे संगीत की शिक्षा लेते रहे। सात बार ग्वालियर की यात्रा कर के तानसेन के मज़ार पर गये और हर बार उस इमली के पेड़ की पत्ती तोड़ कर खायी, जो उस मज़ार पर साया किये हुए है। पहले कई वर्ष तक गाना सीखते रहे, पर चूँकि आवाज़ बहुत अच्छी नहीं थी, इसलिए उस्तादों की सलाह से गाना छोड़ कर सितार का शौक़ करते रहे। लय और ताल की बेहद समझ रखते

थे। कहते हैं कि सोते में इनके पाँव का अँगूठा ताल देता रहता था। इनके पास एक बहुत पुराना तंबूरा था, जिसके बारे में मशहूर था कि वह मुहम्मद शाह रंगीले के दरबारी गायक नेमत अली खाँ सदारंग का है। बुढ़ापे में संगीत सम्बन्धी एक किताब 'सदाए-दिल नशीं नाम से लिखी, जिसकी पांडुलिपि शायद इनका कोई दोस्त चुरा कर ले गया। बुढ़ापे में इस सदमे ने मिर्ज़ा की कमर तोड़ डाली और फिर चंद रोज़ बाद ही स्वर्ग सिधार गये।

मिर्ज़ा अच्छे

नन्हें मिर्ज़ा के बेटे। बहुत मामूली तालीम हासिल की। बाप-दादा की तरह इन्होंने भी कारोबार या नौकरी नहीं की, बल्कि दोनों को बुरा समझते रहे। थियेटर के बड़े शौक़ीन थे। इनकी हार्दिक इच्छा थी कि इनका अपना कोई थियेटर हो। पर बाप के जीवित रहते इस इच्छा की पूर्ति न हो सकी। बाप के मरने पर एक बार इन्होंने एक थियेटर के मालिक से मामला तय करना चाहा, पर किसी कारण इनकी मंशा पूरी न हो सकी। लाचार हो इन्होंने अपना विचार त्याग दिया।

लाड़ले मिर्ज़ा

मिर्ज़ा अच्छे के फ़रजंद दिलबंद। सिर्फ़ क़ायदा पढ़ा। बहुत विलक्षण स्वभाव के आदमी थे और स्वर्गवासी पिता की तरह थियेटर के शौक़ीन भी। पिता इन्हें अपने साथ थियेटर ले जाया करते थे। सच पूछिए तो इनको थियेटर का चस्का पिता ने ही लगाया था। पिता के मरने पर ये कुल जायदाद के वारिस बने। एक बार एक हिंदुस्तानी फ़िल्म देखने गये। उसमें कलकत्ते की एक हसीन एक्ट्रेस, लैला का अभिनय इन्हें बहुत भाया। उसका गला भी ग़ज़ब का था। इनका दिल उस पर आ गया। महीनों मुहब्बत-भरे खत लिखते रहे। आखिर कलकत्ता पहुँचे। बहुत-सा रुपया खर्च कर के उस तक पहुँच हुई और इन्होंने उससे विवाह का प्रस्ताव किया। लैला ने ऐसी खूबी से टाला कि इनका दिल न टूटा। तीन साल तक उससे मेल-

जोल रखा। बड़े-बड़े क़ीमती उपहार उसे भेंट करते रहे, यहाँ तक कि उसके नाम से एक फ़िल्म कम्पनी भी खोल दी। आखिर लैला शादी पर राज़ी हो गयी। शादी के दूसरे ही वर्ष फ़िल्म कम्पनी फ़ेल हो गयी और लैला भी किसी ऐक्टर के साथ भाग गयी। लैला से एक लड़का हुआ था, जिसे ले कर वतन आये और उसके लालन-पालन के लिए एक नर्स रखी। यहाँ आ कर पता चला कि सारी जायदाद इश्क की भेंट चढ़ गयी और ले दे कर एक मकान और चंद दुकानें शेष रह गयी हैं। उन्हीं दुकानों के किराये पर गुज़र करने लगे।

मुहम्मद शफ़ी

लाड़ले मिर्ज़ा के बेटे। स्टेशन के पास 'शफ़ी होटल' नाम से एक छोटी-सी दुकान है। मुश्किल से गुज़ारा होता है। सुना है कि अब इन्होंने चोरी-छिपे शराब भी बेचनी शुरू कर दी है।